

# श्रीमंत शंकरदेव की नाट्य - कला

मणि कुमार

भक्ति आंदोलन के पूर्व पूर्वोत्तर में नाटक लिखे जाने का कुछ भी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। “शंकरदेव के समय से ही नाटकों का प्रचार और अभिनय प्रारंभ हुआ तथा असम में नाटक के प्रति जनसामान्य में अभिरुचि जगी।”<sup>1</sup> ' इसलिए पंडित हेमचन्द्र गोस्वामी ने इन्हें “असमी नाटक साहित्य का जनक स्वीकार किया।”<sup>2</sup> श्रीमंत शंकरदेव तीर्थाटन से विभिन्न नाट्य रूपों से प्रभावित होकर लौटे और भक्ति आंदोलन का प्रचार-प्रसार आरंभ किया। पूर्वोत्तर में भक्ति आंदोलन के प्रचार-प्रसार में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका श्रीमंत शंकरदेव द्वारा लिखित नाटकों की रही है।

शंकरदेव कालीन साहित्य के अध्ययन के पश्चात यह दिखने को मिलता है कि साहित्य दो खाकों में बंटा हुआ था। प्रथम, भक्ति आंदोलन से नितांत अछूता था, वह इसके प्रभाव से दूर रह कर शुद्ध लौकिक वृत्तांतों पर रचनाएँ लिख रहा था। इस दल ने नाटकों की रचना की, इसकी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। प्रमुख रचनाकारों में दुर्गावर और पीतांबर का नाम उल्लेखनीय है। "Durgavara and Pitambar are contemporaries of Shankardeo. They are in a way free from the reaching influence of Neo-Vashnavisma that had spread in Asam from the latter part of fifteenth century and their poetry is more secular than religious in tone."<sup>3</sup> दूसरी तरफ शंकरदेव थे, जिन्होंने भक्ति आंदोलन से प्रभावित होकर भक्ति के सिद्धांत को लोकप्रिय बनाने के लिए नाट्य रूपों का सहारा लिया। अपने उद्देश्य की प्राप्ति और उसके प्रचार-प्रसार के लिए इन्होंने छह नाटकों (उपलब्ध) की रचना की, जिनके नाम रचना कालक्रमानुसार इस प्रकार हैं - 'कालियादमन', 'पत्नी प्रसाद', 'केलि गोपाल', 'रुक्मिणी हरण', 'पारिजात हरण' और 'राम विजय'। इसके विपरीत प्रो. बरुआ ने शंकरदेव के नाटकों को इस क्रम में रखा है - 'कालियादमन', 'रासक्रीड़ा' या 'केलि गोपाल', 'पत्नी प्रसाद', 'पारिजात हरण' और 'राम विजय', 'रुक्मिणी हरण'।<sup>4</sup>

असम के नाटकों के संबंध में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि शंकरदेव और उनके परवर्ती वैष्णव नाट्यकार मूलतः एक उपदेशक और प्रचारक हैं इसके पश्चात ही वे एक नाटककार या कलाकार के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हो पाते हैं। यही कारण है कि एक निर्धारित सीमा और रूपरेखा के अंतर्गत ही इन नाटकों की कथावस्तु, शैली और चरित्रगत विशेषताओं का निदर्शन किया गया है। शंकरदेव के नाटकों के अध्ययन से यह स्पष्टतः लक्षित होता है कि इनका कथानक प्रायः पूर्व निश्चित और नियोजन योजना के आधार पर ही अग्रसर होता है, जिसके कारण इन नाटकों में कलात्मकता के साथ-साथ प्रचारात्मक तत्व भी उपलब्ध हैं। एक तथ्य और भी उल्लेखनीय है कि शंकरदेव के नाटकों में विभिन्न नाट्य शैलियों का

सम्मिश्रण है। यही कारण है कि इनके नाटकों की नाट्य शास्त्रीय अथवा किसी विशेष लोकनाट्य शैली के आधार पर ही समीक्षा प्रस्तुत नहीं की जा सकती।

श्रीमंत शंकरदेव के नाटकों की संख्या सामान्यतः छह बताई जाती है, किंतु कुछ गुरुचरित एवं कुछेक स्थानों पर उनके द्वारा रचित आठ नाटकों का पता चलता है। उनमें से छह ही प्रकाश में आ सके हैं, शेष दो अप्राप्य हैं। अप्राप्य नाटकों के नाम इस प्रकार हैं- 'चिह्न यात्रा', 'जन्म यात्रा' अथवा कंस वध। मागध जी शंकरदेव के अप्राप्य नाटकों के विषय में लिखते हैं कि, "दूसरा सूच्य नाटक है - 'कंस वध'। रामचरण ठाकुर ने इसका उल्लेख जन्म यात्रा के नाम से किया है। इस नाटक के लेखन की पुष्टि श्री पूर्णानन्द भी करते हैं।"<sup>5</sup> श्रीमंत शंकरदेव केवल एक नाटक 'राम-विजय' में उसके रचना काल का उल्लेख करते हैं। शेष नाटकों में रचना-काल का निर्धारण बाह्य साक्ष्यों के द्वारा करना पड़ता है।

15वीं - 16वीं शताब्दी में श्रीमंत शंकरदेव के माध्यम से पूर्वोत्तर भारत में वैष्णव धर्म का एक नया अध्याय प्रारंभ हो जाता है। "15वीं शताब्दी तक वैष्णव भक्ति अथवा भागवत धर्म शक्तिशाली देशव्यापी धार्मिक, सांस्कृतिक आंदोलन का रूप ले चुका था। अपने व्यापक रूप में सभी कलाओं एवं सामुदायिक जीवन के हर पक्ष को समृद्ध बना चुका था। महान उपदेशक एवं संत कवियों ने विष्णु के अवतारों - विशेषकर कृष्ण और राम के विषय में भावमय गीतों की रचना की। वैष्णव भक्ति आंदोलन द्वारा प्रवर्तित भक्ति एवं पूजा की संकल्पना ही मध्यकालीन नाट्य परंपरा की भावभूमि बनी।"<sup>6</sup>

श्रीमंत शंकरदेव ने अपने विवेकशील पांडित्य के आधार पर समयानुकूल परिष्करण के साथ तत्कालीन समाज में वामाचारियों एवं कर्मकांडियों के फैले हुए प्रभाव को लक्ष्य कर, उससे मुक्ति पाने के लिए भक्ति के सिद्धांत को सरलता और सुगमता का रूप दिया। फिर भी जब इन्हें अनुभव हुआ कि जन हृदय में पूर्व संस्कार ज्यों के त्यों बने हुए हैं तो इन्होंने कीर्तन, पद, पुराणों के लेखन एवं अनुवाद आदि रचनात्मक कार्यों के साथ एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग भी प्रारंभ किया। जिस प्रयोग का नाम था 'अंकिया नाटक'। "शंकरदेव असमिया नाट्य-साहित्य के जनक हैं। उनके पूर्व असम में नाटक - साहित्य की कोई परंपरा नहीं मिलती है। असम में प्रचलित 'ओजापालि', 'दुलिया', 'पुतुली' नृत्य इत्यादि की कुछ लोक- नाट्य परंपरा रही है अवश्य, पर पूर्ण रूपेण नाटक की परंपरा शंकरदेव के कारण ही संभव हो सकी। उन्होंने श्रीकृष्ण की लीला-माला को श्रव्य दृश्य रूप में प्रस्तुत कर जन मानस को आह्लादित करने के लिए नाट्य-विधा को अपनाया। इनके नाटकों में एक अंक होने के कारण 'अंकिया नाट' या नाटक कहा जाता है। असम में अंकिया का पर्याय है 'भाओना'। महापुरुष शंकरदेव ने इन्हें 'नाटक' की संज्ञा दी है।"<sup>7</sup>

दृश्य काव्य में प्रत्यक्षानुभूति के साथ ही श्रव्यता का गुण भी विद्यमान रहता है। शंकरदेव इस तथ्य से अपरिचित नहीं थे कि चाक्षुष प्रत्यक्ष के द्वारा हृदय-पटल पर अंकित चित्र का प्रभाव जितना स्थायी होता

है, उस अनुपात में उपदेश और अध्ययन का प्रभाव अत्यंत क्षीण सिद्ध होता है। प्रत्यक्ष दर्शन से मानस पटल पर उसका रूप अंकित हो जाता है और जिसका पुनस्मरण भी शीघ्र ही किया जा सकता है। यही कारण था कि श्रीमंत शंकरदेव ने अपने सिद्धांत के प्रचार के लिए नाट्य-रूपों को अपनाया। "मनोरंजन के साथ-साथ वैष्णव नाटक का उद्देश्य था धार्मिक और नैतिक प्रकार की शिक्षा देना। इस उद्देश्य के लिए दृश्य-काव्य से अधिक उत्तम साधन और क्या हो सकता है, विशेषतः उन अपढ़ लोगों की शिक्षा के हेतु जिनके लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' है।"<sup>8</sup> ईश्वर के गुण कर्मों को कृत्रिम प्रसाधनों के उपयोग एवं अभिनय कला के माध्यम से जन समूहों में प्रदर्शित करने से भक्ति के प्रचार के साथ ही कुप्रभावों को विनाश करने का लक्ष्य भी अनायास ही सिद्ध हो जाता है। यही कारण है कि शंकरदेव ने नाट्य-रूपों को अपनाकर एक नवीन साहित्यिक परंपरा का सूत्रपात किया। नेमिचन्द्र जैन ने श्रीमंत शंकरदेव द्वारा रचित "अंकियानाट जैसे धार्मिक नाट्यरूप को मध्यकालीन भारत में हिंदू जाति की 'आत्मप्रतिष्ठा' के उस अभियान के रूप में देखा है जिसका मुकाबला मुसलमान शासकों से था"<sup>9</sup> शंकरदेव को अपने क्षेत्र में वैष्णव-भक्ति का प्रचार-प्रसार करना था, अतः यह नितांत आवश्यक था कि वे उस स्थल के जन-नाट्य-रूपों को भी अपनाते। अतएव ओजापालि का, विभिन्न उत्सवों में पड़ने वाले प्रभाव का परिष्कृत रूप भी श्रीमंत शंकरदेव के नाटकों में दृष्टिगत होता है। साथ-ही-साथ मध्यकालीन मैथिली नाटक, भारत के विभिन्न लोकनाट्य की परंपरा के साथ संगीतक और संस्कृत नाट्य परंपरा भी शंकरदेव के नाटकों की रचना के प्रेरणास्रोत सिद्ध हुए। शंकरदेव संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे,

अतः वे अपने नाटकों में उस परंपरा के मोह का त्याग नहीं कर सके। इतना अवश्य है कि समयानुकूल परिष्करण के साथ ही शंकरदेव ने अपने नाटकों में उसे उपस्थित किया है। "शंकरदेव के नाटकों की मूल प्रेरणा 'संगीतक' में ही खोजी जा सकती है। उमापति, विद्यापति और शंकरदेव में संगीतक ने अपना स्वतंत्र और स्थान-कालानुरूप विकास किया है। शंकरदेव के नाटक उमापति अथवा विद्यापति से अप्रभावित हैं। संस्कृत के हासोन्मुखी नाटकों का प्रभाव भी उन पर लक्षित होता है। मध्यकालीन विभिन्न लोकधर्म नाट्य-योजनाओं और ओजापालि जैसे स्थानीय नृत्यों ने अंकिया नाटकों को मांसल बनाने में पूर्ण योगदान किया है।"<sup>10</sup>

शंकरदेव ने नाटकों की कथावस्तु के लिए श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध को आधार बनाया। दसवें स्कंध के अंतर्गत वासुदेव और देवकी पुत्र कृष्ण का जन्म, गोकुल में उनका जन्मोत्सव, पूतना, शकट भंजन और वृणावर्त का उद्धार, विविध प्रकार की बाल-लीलाएं तथा वत्सासुर, बकासुर और अघासुर का उद्धार, कालिया नाग का उद्धार, गोपियों की रक्षा करना, श्रीकृष्ण का अभिषेक, सुदर्शन और शंखचूड़ का उद्धार, श्रीकृष्ण और बलराम का मथुरागमन, कुब्जा का उद्धार, कंस का वध, उद्धव और गोपियों की बातचीत, अक्रूर जी का हस्तिनापुर गमन। इसके अतिरिक्त दशम स्कंध के उत्तरार्ध में जरासन्ध का युद्ध, द्वारका पुरी का निर्माण, रुक्मिणी हरण, कृष्ण-रुक्मिणी विवाह, भौमासुर का उद्धार, भगवान की संतति का वर्णन, रुक्मी का वध, उषा-अनुरुद्ध मिलन आदि कथाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। शंकरदेव इन कथाओं में से कुछ

कथाओं को अपने नाटकों के लिए चुनते हैं। इन कथाओं का मौलिक रूप में प्रस्तुतिकरण श्रीमंत अपने नाटकों के माध्यम से करते हैं, जो उनकी रचनात्मक शक्ति का प्रमाण है।

डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' श्रीमंत शंकरदेव के नाटकों के वस्तु - संगठन और रचना - कौशल के बारे में लिखते हैं कि, "शंकरदेव के नाटक कथानक की दृष्टि से पौराणिक, प्रतिपाद्य की दृष्टि से धार्मिक और शैलीगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से संगीतक हैं। राम-विजय के अतिरिक्त सभी नाटक कृष्ण से संबंधित हैं। शंकरदेव ने अपने नाटकों के कथानक का रूप स्थिर करने और उसकी कथावस्तु के रूप में गढ़ने के पूर्व श्रीमद्भागवत के इतिवृत्तों का भली-भांति अध्ययन किया होगा। यदि हम यह कहें कि इसके लिए उन्होंने अपने ढंग पर अनुसंधान कर प्रसंग-परिकलन-बुद्धि से उसकी संगत एकात्मकता स्थापित की होगी, तो अनुचित न होगा।" <sup>11</sup>

शंकरदेव की नाट्य - कला की बात करें तो नृत्य और संगीत उनकी नाट्य संरचना के भीतरी तत्व हैं। गायन-बायन मंडली के गीत-संगीत और अभिनेताओं के नृत्य मूलकथा के विकास से ही नहीं अपितु चरित्रों की अभिव्यक्ति से अंतर्संबंधित होते हैं। 'अंकिया' समेत प्रायः सभी लोकनाट्य रूपों की रंग संभावनाएं नृत्य संगीत के इसी सर्जनात्मक प्रयोग के कारण ही होती हैं। श्रीमंत शंकरदेव के नाटकों का रंगमंच भी मूलतः नृत्याभिनय का रंगमंच है। श्रीमंत शंकरदेव के नाटकों के अंतर्गत नाट्यशास्त्र में निर्देशिक पूर्वरंग का भी थोड़े से अंतर के साथ अनुकरण दिखायी देता है। नाटकों का पूर्वरंग बहुत स्पष्ट और अनुशासित है। पूर्वरंग की इस क्रिया का आरंभ 'श्रीमद्भागवत ग्रंथ' की स्तुति से होता है। सूत्रधार की वेशभूषा अपनी रंग रचना में विशिष्ट होती है। सूत्रधार नृत्य करते हुए रंगस्थल पर प्रवेश करता है। 'रंगस्थली' पर आकर वह गायन- बायन दल द्वारा किए जाते हुए नांदीपाठ और 'भटिमाओं' को अपने हस्ताभिनय द्वारा अर्थ देता है। प्रेक्षकों को श्रीकृष्ण के आगमन की सूचना देता है और श्रीकृष्ण का गोपीजन के साथ प्रवेश होता है। इस प्रकार नाट्य वस्तु, अभिनेता और प्रकाश आदि के विलक्षण सर्जनात्मक तालमेल के कारण तथा परंपरा से प्राप्त रंग रूढ़ियों के प्रति गहरी एकनिष्ठता के कारण शंकरदेव की रंग शैली बहुत संगठित और सर्जनात्मक है। शंकरदेव की नाट्य शैली में भारतवर्ष की रीति-नीति, गीत, नृत्य, प्रदर्शन, अभिनय आदि को देखा समझा जा सकता है।

डॉ. दशरथ ओझा अपनी पुस्तक 'नाट्य-समीक्षा' में शंकरदेव के नाटकों की विशेषताएं बताते हुए लिखते हैं कि, शंकरदेव के नाटकों की अपनी एक स्वतंत्र सत्ता है, वे संस्कृत, प्राकृत या अन्य किसी नाट्य - परंपरा का अनुसरण नहीं करते। उनमें अंक या दृश्य - विभाजन का नितांत अभाव है। अधिकतर पात्र नाटक के उपोद्घात से लेकर परिसमाप्ति तक निरंतर कार्य- व्यापार में रत परिलक्षित होते हैं। यहाँ, पृष्ठभूमि के रूप में किसी प्रकार की साज-सज्जा विद्यमान नहीं होती, समय और दूरी की सूचना गान एवं नृत्य के माध्यम से दे दी जाती है। प्रारंभिक गान के अनन्तर शीघ्र ही रंगमंच पर सूत्रधार का प्रवेश होता है, वह नाटक की

घोषणा करता है और आद्योपांत समस्त प्रदर्शन का संचालन नृत्य, गीत और व्याख्यात्मक समीक्षा द्वारा करता है। नाटक जन बोली में रचे गए हैं, इस जन बोली में ब्रज से आसाम तक की प्रचलित जनभाषा का समावेश पाया जाता है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें लचीलापन, ध्वन्यात्मक माधुर्य, अपभ्रंश की ओजस्विता आदि गुण स्वाभाविक रीति से पाए जाते हैं और इन सबके सामूहिक परिणामस्वरूप प्रगीत और पद्यात्मक नाटक का आभास होता है। नाटक में गद्यात्मक संवाद भी मुहावरों में होता है, सूत्रधार का विवरण इसी प्रकार की भाषा में मिलता है, कभी-कभी गीत की भाषा का भी प्रयोग गद्य में होता है। बीच-बीच में संस्कृत श्लोकों का समावेश रहता है। यदा-कदा करुणोत्पादक कथानक के साथ असमिया छंद 'पयारस' का भी योग मिलता है। नाटकों में हमें जन भाषा का आदि रूप प्राप्त होता है, किंतु न तो यह पद्यात्मक माधुर्य समन्वित नितांत गद्य ही होता है और न ही यह परिमार्जित गद्य ही होता है। नाटक का प्रारंभ संस्कृत में नांदी से होता है तथा प्रारंभ में ही नाटक के पात्रों और विषय की सूचना दे दी जाती है। प्रारंभ में ही नाटक के नायक की स्तुति की जाती है। सूत्रधार और उसके संगी का वार्तालाप भी अत्यंत संक्षिप्त होता है। यह वार्तालाप संस्कृत के आमूख अथवा प्रस्तावना का अनुसरण करता है। प्रवेशगीत के साथ नायक का प्रवेश होता है। नायिका तथा अन्य पात्र भी समुचित नृत्य मुद्रा में प्रवेश करते हैं।<sup>12</sup>

इस प्रकार संक्षिप्त रूप में कहें तो, "शंकरदेव के नाटक उनकी बहुज्ञता, कलाप्रियता, भारतीय जीवन की समग्रता और एकात्मकता, समन्वयात्मक बुद्धि, लोकमंगलकारिणी दृष्टि इत्यादि के विचार से तदयुगीन अद्वितीय उपलब्धि हैं। वह उनकी युग-प्रवर्तक प्रतिभा का परिचायक है। शंकरदेव जैसा भावुक कवि जैसे नाटकों में जीवन को वास्तविक धरातल पर उतार लाने में सफल हो गया है। साथ ही उनके कवि नाटककार और संत का पार्थक्य यहाँ मिट गया है। नाट्य-कौशल का शंकरदेव के अतिरिक्त उस युग में कोई दूसरा प्रतिमान नहीं।"<sup>13</sup>

अतः यह कहना उचित होगा कि भारतीय नाट्यकला के इतिहास में श्रीमंत शंकरदेव के नाटकों का महत्व अद्वितीय है। "शंकरदेव की यह बड़ी विशेषता है कि उन्होंने संस्कृत के साथ जन-भाषा, संगीतमय पदों के साथ परिमार्जित गद्य, शास्त्रीय नाट्यविधान के साथ लोकनाट्य शैली, विद्वतमंडली के साथ अशिक्षित जन समुदाय का भी सदा ध्यान रखा। दोनों पद्धतियों के सामंजस्य से उन्होंने नाट्य साहित्य का एक नया रूप निर्मित किया।"<sup>14</sup> भारतीय नाट्यकला के इतिहास में श्रीमंत शंकरदेव के नाटकों का महत्वपूर्ण स्थान है। मध्यकालीन विभिन्न लोकनाटकों एवं संस्कृत नाटकों को उपकरण के रूप में स्वीकार कर शंकरदेव ने नवीन नाट्य-विधा को विकसित-प्रचारित किया। शंकरदेव के नाटक सर्वाधिक लोकप्रिय, सप्राण और सशक्त विधा है, यह ऐतिहासिक सत्य है। यह दुःख की बात है कि भारतीय रंगमंच इस सत्य से दूर है। शंकरदेव के नाटकों को भारतीय रंगमंच के इतिहास में लोकनाट्य तथा अंकिया नाट्य के अंतर्गत बहुत ही संक्षिप्त रूप में स्थान प्राप्त हुआ है। शंकरदेव के सभी नाक पौराणिक हैं। वे कथा प्रधान हैं। इनके नाटकों में सांस्कृतिक भारत चित्रित है। यहाँ व्यक्ति की अपेक्षा समाज और राष्ट्र को और उनसे भी अधिक मानवता को महत्व मिला है। अतः शंकरदेव ने भारत की असम-धरा पर जिस शाश्वत भारतीय साहित्य (नाटक) की रचना शताब्दियों पूर्व की, वह न केवल धार्मिक बल्कि साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से भी

अन्यतम उपलब्धि है। भारतीय राष्ट्र की एकात्मकता के विघटन और बिखराव को रोकने की दृष्टि से उनके नाटकों में राष्ट्रव्यापी परंपरा का जो सम्यक और देशकालानुरूप नियोजन हुआ है, उसका महत्व युगों तक बना रहेगा।

#### संदर्भ

1. महाकवि शंकरदेव: विचारक एवं समाज सुधारक - डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', पृ. 452
2. असमिया साहित्य - हेम बरुआ, पृ. 84
3. Aspects of Early Assamese-Literature - B. Kakoti (Ed.), page no. 200
4. असमिया साहित्य - हेम बरुआ, पृ. 82
5. महाकवि शंकरदेव : विचारक एवं समाज सुधारक - डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', पृ. 453
6. हे सामाजिक - सुरेश अवस्थी, पृ. 15
7. श्रीमंत शंकरदेव: व्यक्तित्व और कृतित्व - डॉ. भूपेंद्र राय चौधरी, पृ. 48-49
8. असमिया साहित्य - हेम बरुआ, पृ. 84
9. भारतीय लोकनाट्य - डॉ. विशिष्ट नारायण त्रिपाठी, पृ. 24
10. महाकवि शंकरदेव : विचारक एवं समाज सुधारक - डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', पृ. 469-470
11. महाकवि शंकरदेव : विचारक एवं समाज सुधारक डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', पृ. 471
12. नाट्य - समीक्षा - डॉ. दशरथ ओझा, पृ. 62
13. महाकवि शंकरदेव : विचारक एवं समाज सुधारक - डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', पृ. 495
14. नाट्य - समीक्षा - डॉ. दशरथ ओझा, पृ. 63

ई. मेल -manni10590@gmail.com